भारत संघ और अन्य
बनाम
काली दास बातिश और अन्य
5 जनवरी 2006

[वाई.के. सभरवाल, मुख्य न्यायाधीश, बी.एन. श्रीकृष्णा और आर.वी. रवींद्रन, न्यायमूर्तिगण]

भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 और 323 ए - केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण - न्यायिक सदस्य की नियुक्ति - मुख्य न्यायाधीश, भारत (मुख्य न्यायाधीश आई) के एक मनोनीत व्यक्ति की अध्यक्षता में चयन समिति द्वारा अनुशंसित उम्मीदवारों को न नियुक्त करना, खुफिया ब्यूरो (आईबी) द्वारा रिपोर्ट किए गए उनके पूर्व इतिहास को देखते हुए - गैर-नियुक्ति का निर्णय मुख्य न्यायाधीश आई के परामर्श से लिया गया - निर्णय पर न्यायिक समीक्षा का दायरा - अभिनिर्धारित: न्यायिक समीक्षा अनुमेय नहीं थी - संसद ने मुख्य न्यायाधीश आई पर न्यायिक पदानुक्रम के पितृसत्ता के रूप में भारत के मुख्य न्यायाधीश में विश्वास जताते हुए, किसी के लिए यह दावा करना खुला नहीं है कि मुख्य न्यायाधीश आई ने बिना मत लगाए अपनी सहमति दी होगी - प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985 - धारा 4, 6 और 7.

पहले और दूसरे प्रत्यर्थी उन उम्मीदवारों में से थे जिन्हें केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण के न्यायिक सदस्यों के रूप में नियुक्त करने के लिए सिफारिश की गई थी। भारत के मुख्य न्यायाधीश के एक मनोनीत व्यक्ति (एक कार्यवाहक उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश) की अध्यक्षता में एक चयन समिति द्वारा। हालांकि, खुफिया ब्यूरो (आईबी) द्वारा बताए गए उनके पूर्व इतिहास को देखते हुए उनकी नियुक्ति नहीं की गई थी। गैर-नियुक्ति का निर्णय भारत के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से लिया गया था।

उक्त प्रतिवादियों ने उनके गैर-नियुक्त होने को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाएं दायर कीं, पहला प्रत्यर्थी हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष और दूसरा प्रत्यर्थी झारखंड उच्च न्यायालय के समक्ष। झारखंड उच्च न्यायालय ने राहत देने से इनकार कर दिया, यह कहते हुए कि ऐसे मामलों में न्यायिक समीक्षा का कोई दायरा नहीं है, लेकिन हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय ने इसके समक्ष दायर रिट याचिका को स्वीकार कर लिया और केंद्र सरकार को निर्देश दिया कि वह पहले प्रत्यर्थी के मामले पर नए सिरे से विचार करे। इसलिए, केंद्र सरकार ने हिमाचल प्रदेश के फैसले के खिलाफ इस न्यायालय के समक्ष अपील दायर की। झारखंड उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ भी इस न्यायालय के समक्ष अपीलों के एक अलग समूह में अपील की गई थी।

हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ अपील को स्वीकार करते हुए और झारखंड उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ अपीलों को खारिज करते हुए, न्यायालय ने निर्णय सुनाया:

अभिनिर्धारित: 1.1. हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय ने इस मामले में ऐसा व्यवहार किया है जैसे किसी कार्यकारी अधिकारी द्वारा की गई नियुक्ति से निपट रहा हो।

1.2. केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण (सीएटी) संविधान के अनुच्छेद 323 ए के तहत गठित एक न्यायाधिकरण है और यह अपेक्षा की जाती है कि इसका अधिकार क्षेत्र उच्च न्यायालय के समान हो। नतीजतन, संसद ने प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 6 और 7 के माध्यम से अत्यधिक सावधानी से अधिनियमित किया है कि अधिनियम में निर्धारित योग्यता रखने वाले किसी व्यक्ति की सदस्य के रूप में नियुक्ति, भारत के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श के बाद ही की जाएगी। भारत के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श न तो कोई मामूली मामला है और न ही कोई औपचारिकता है।

1.3. सीएटी जैसे प्रशासनिक न्यायाधिकरण का एक सदस्य व्यापक न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करता है, और ऐसे सदस्य को पूर्ण न्यायिक स्वतंत्रता सुनिश्चित की जानी चाहिए, किसी भी प्रकार के ऐसे प्रभावों से मुक्त जो स्वतंत्र न्यायिक कार्यप्रणाली में हस्तक्षेप कर सकते हैं या उसका विरोध कर सकते हैं। यही कारण है कि भारत सरकार द्वारा एक नीतिगत निर्णय लिया गया था कि बार के सदस्यों को ऐसे पद पर नियुक्ति के लिए विचार करते समय, उनके पूर्ववृत्तों को खुफिया ब्यूरो (आईबी) द्वारा सत्यापित किया जाना चाहिए। पूर्ववृत्तों में विभिन्न तथ्य शामिल होंगे जैसे असामाजिक तत्वों, गैरकानूनी संगठनों, राजनीतिक संबद्धता, आचरण की ईमानदारी और नैतिक ईमानदारी के साथ जुड़ाव। इन सभी कारकों को आवश्यक रूप से सत्यापित किया जाना चाहिए, इससे पहले कि नियुक्ति प्राधिकारी सीएटी के सदस्य जैसे संवेदनशील पद पर किसी उम्मीदवार की नियुक्ति का निर्णय ले।

1.4. अधिनियम की धारा 6 की उप-धारा (7) यह मांग करती है कि सीएटी के सदस्य की नियुक्ति "भारत के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श के बाद ही" की जा सकती है। यह परामर्श, निश्चित रूप से, सभी आवश्यक कागजात भारत के मुख्य न्यायाधीश के समक्ष रखने के बाद एक प्रभावी परामर्श होना चाहिए, और यह पद पर बिल्कुल उपयुक्त उम्मीदवारों की नियुक्ति की आभासी गारंटी है।

दिल्ली प्रशासन बनाम सुशील कुमार [1996] 11 एससीसी 605 पर निर्भर किया गया।

2.1. दुर्भाग्य से, हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय ने इस आधार पर आगे बढ़ने का प्रतीत होता है कि केंद्र सरकार द्वारा स्वयं पर नियुक्ति की जा रही थी और आईबी रिपोर्ट को अनुचित महत्व देकर सचिव द्वारा एक अनियमित प्रक्रिया का पालन किया गया था। उच्च न्यायालय द्वारा आईबी रिपोर्ट में उठाए गए मुद्दों पर अपील में बैठना और हलफनामे और बार में महाधिवक्ता के मौखिक बयान लेकर इसका खंडन करने का प्रयास करना सबसे अनियमित था। इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय की इस तरह की कार्रवाई की कड़ी निंदा की है, खासकर तब जब उच्च न्यायालय को बताया गया था कि सरकार द्वारा किए गए प्रस्ताव के साथ, राज्य मंत्री ने विशेष रूप से भारत के मुख्य न्यायाधीश को उनकी सहमति लेने के लिए आईबी रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निर्देश दिया था, और यह किया गया था। अफसोस की बात है कि उच्च न्यायालय न केवल भारत सरकार द्वारा लिए गए फैसले पर, बल्कि भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा लिए गए फैसले पर भी अपील में बैठ गया, जिसे उसने एक तरफ हवा में खारिज कर दिया। उच्च न्यायालय ने ऐसा करने में गंभीर गलती की। यह मानते हुए भी कि भारत सरकार के संबंधित विभाग के सचिव ने सभी आवश्यक तथ्यों से खुद को अवगत नहीं कराया था, लेकिन भारत के मुख्य न्यायाधीश जैसे उच्च संवैधानिक प्राधिकारी को ऐसी प्रक्रियात्मक या मूलभूत त्रुटि का श्रेय या आरोप नहीं दिया जा सकता है। यह तर्क कि भारत के मुख्य न्यायाधीश को आवश्यक इनपुट नहीं दिए गए हो सकते हैं, का कोई मतलब नहीं है। यदि संसद ने इस देश में न्यायिक पदानुक्रम के पितृसत्ता के रूप में भारत के मुख्य न्यायाधीश में विश्वास जताया है, तो किसी के लिए यह दावा करना खुला नहीं है कि भारत के मुख्य न्यायाधीश ने बिना मन लगाए या आवश्यक इनपुट का आह्वान किए अपनी सहमति दी होगी। तर्क, कम से कम कहने के लिए, सारांश खारिज करने का हकदार है।

2.2. हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय का विवादित निर्णय त्रुटिपूर्ण है और इसे अलग करने की आवश्यकता है, जबकि झारखंड उच्च न्यायालय का निर्णय सही है और कानून की स्थिति के अनुरूप है और इसे बरकरार रखने की आवश्यकता है। झारखंड उच्च न्यायालय ने इस मामले को इस सिद्धांत पर सही ढंग से संबोधित किया कि ऐसे मामले में न्यायिक समीक्षा उपलब्ध नहीं है। इसने यह भी ठीक ही बताया कि चयन सूची में किसी उम्मीदवार के नाम के शामिल होने से उसे कोई अधिकार नहीं मिला, और अगर कोई अधिकार नहीं था, तो कोई मौजूदा अधिकार के प्रवर्तन के लिए रिट याचिका को बनाए रखने का कोई अवसर नहीं हो सकता था।

संदर्भित मामले: पंजाब राज्य बिजली बोर्ड और अन्य बनाम मलकीत सिंह, [2005] 9 एससीसी 22; शंकरसन दाश बनाम भारत संघ [1991] 3 एससीसी 47 और के. अशोक रेड्डी बनाम भारत सरकार और अन्य, [1994] 2 एससीसी 303, पर निर्भर किया गया।

समीक्षा आवेदनस. मित्तल बनाम भारत सरकार, [1995] सप्ल 2 एससीसी 230 और डॉ. ए.के. दोशी बनाम भारत सरकार, [2001] 4 एससीसी 43, से भिन्न समझा गया।

सरवन सिंह लाम्बा और अन्य बनाम भारत सरकार और अन्य, [1995] 4 एससीसी 546, का उल्लेख किया गया।

सिविल सेवा यूनियनों की परिषद बनाम मिनिस्टर फॉर द सिविल सर्विस (जीसीएचक्यू केस) (1985) एसी 374, का उल्लेख किया गया।

क्रेग का प्रशासनिक कानून, दूसरा संस्करण. पृष्ठ 291, प्रस्तर 21 और डी स्मिथ की न्यायिक समीक्षा का प्रशासनिक कार्रवाई, प्रस्तर 23, का उल्लेख किया गया।

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 6663/2004

रिट याचिका संख्या 812/2003 में हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय के दिनांक 25.5.2004 के फैसले और आदेश से,

साथ में

सिविल अपील संख्या 7575-7576/2004

जी.ई. वाहनवटी, एसजी, आर. मोहन, एसजी, देवदत्त कामत, ऋषिकेश बरुआ, सुश्री सुरुचि सूरी, पी.पारमेस्वरन, सुश्री सुषमा सूरी और अशोक कुमार शर्मा – अपीलार्थियों के लिए।

नरेश के. शर्मा प्रत्यर्थी संख्या 1 के लिए

प्रत्यर्थी संख्या 2 स्वयं व्यक्तिगत रूप से

न्यायालय का निर्णय दिया गया,

न्यायाधीश श्रीकृष्ण द्वारा- अपीलों का यह समूह इस न्यायालय के समक्ष निर्धारण के लिए निम्नलिखित प्रश्न उठाता है:

भारत के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से किए गए केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण के सदस्य की नियुक्ति के आदेश में 'न्यायिक समीक्षा' का क्या दायरा है?

केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण (जिसे आगे "सीएटी" कहा गया है) 1985 के प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम (जिसे आगे "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 4 के तहत गठित न्यायाधिकरणों में से एक है, जिसका अधिकार क्षेत्र अधिनियम की धारा 14 द्वारा निर्धारित किया गया है। यह सेवा मामलों और केंद्रीय सरकार के कर्मचारियों के सेवा से संबंधित विवादों के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के अलावा सभी अदालतों द्वारा तत्कालीन नियुक्ति दिवस से प्रयोग किए जाने वाले अधिकार क्षेत्र, शक्तियों और प्राधिकार का प्रयोग करता है। इसमें अधिनियम की धारा 3(ए) और 3(i) में क्रमशः परिभाषित 'प्रशासनिक सदस्य' और

'न्यायिक सदस्य' शामिल हैं। अधिनियम की धारा 6 की उप-धारा (3) और (3 ए) क्रमशः 'न्यायिक सदस्य' और 'प्रशासनिक सदस्य' की नियुक्ति के लिए योग्यता निर्धारित करते हैं। भारत सरकार के कार्मिक और प्रशासनिक प्रशिक्षण विभाग, 15.4.1991 / 23 .4.1991 के आदेश द्वारा सीएटी के उपाध्यक्ष और सदस्यों के चयन के लिए चयन समिति द्वारा अपनाए जाने वाले गठन और प्रक्रिया के बारे में विस्तृत दिशानिर्देश निर्धारित किए गए हैं। न्यायिक सदस्य के चयन के मामले में, चयन समिति की अध्यक्षता भारत के मुख्य न्यायाधीश के एक मनोनीत व्यक्ति द्वारा की जानी चाहिए, जो भारत के सर्वोच्च न्यायालय का एक कार्यवाहक न्यायाधीश होगा और इसमें निम्नलिखित अतिरिक्त सदस्य शामिल होंगे: (i) सचिव, विधि और न्याय मंत्रालय (न्याय मामलों का विभाग); (ii) सचिव, कार्मिक मंत्रालय; और (iii) सीएटी का अध्यक्ष।

दिनांक 1.7.2001 से 31.12.2001 की अवधि के दौरान सीएटी के न्यायिक सदस्यों के सात रिक्त पद और प्रशासनिक सदस्यों के तीन रिक्त पद उत्पन्न हुए। इन रिक्त पदों के लिए विभिन्न प्राधिकरणों से नामांकन आमंत्रित किए गए थे।

सीए. संख्या 6663/2004 में प्रथम और द्वितीय प्रत्यर्थी, क्रमशः के.डी. बटिश और राम किशोर प्रसाद, सीएटी में न्यायिक सदस्य के पद के चयन के लिए उम्मीदवारों में से थे। चयन समिति ने माननीय श्री न्यायमूर्ति जी.बी. पटनायक (जैसा कि वह तब थे) की अध्यक्षता में 18.7.2001 को बैठक की और उपरोक्त रिक्त पदों के लिए चयन के लिए 121 व्यक्तियों के नामों पर विचार किया। प्रथम और द्वितीय प्रत्यर्थी भी चयन के लिए विचार किए गए लोगों में शामिल थे। चयन समिति ने सात व्यक्तियों के नाम न्यायिक सदस्यों के रूप में नियुक्ति के लिए और तीन व्यक्तियों के नाम प्रशासनिक सदस्यों के रूप में नियुक्ति के लिए मुख्य सूची में और उतनी ही संख्या में व्यक्तियों के नाम प्रतीक्षा सूची में अनुशंसित किए। प्रतीक्षा सूची में जिन उम्मीदवारों के नाम आए थे, उन्हें मुख्य सूची में नामित किसी भी व्यक्ति की नियुक्ति नहीं होने पर किसी भी कारण से नियुक्त किया जाना था। प्रथम प्रत्यर्थी-के.डी. बटिश और द्वितीय प्रत्यर्थी-राम किशोर प्रसाद के नाम मुख्य सूची के क्रमशः एसआई संख्या 1 और 6 पर थे। यह स्थापित प्रक्रिया है कि जहां बार के सदस्यों को ऐसे महत्वपूर्ण न्यायिक पदों के लिए विचार किया जाता है, उनके पूर्ववृत्तों का सत्यापन खुफिया ब्यूरो (जिसे आगे "आईबी" कहा जाता है) के माध्यम से आवश्यक है और आईबी से एक रिपोर्ट प्राप्त की जाती है। इस प्रकार, ऐसे सभी अनुशंसित व्यक्तियों के नाम खुफिया ब्यूरो (आईबी) को भेजे गए थे। आईबी से रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद, कार्मिक, लोक शिकायत और पेंशन मंत्रालय के निदेशक (एटी) ने 25.10.2001 को फाइल पर एक टिप्पणी की, जिसमें उन्होंने प्रथम प्रत्यर्थी के संबंध में इस प्रकार नोट किया: (i) कानूनी जगत में उन्हें औसत क्षमता का अधिवक्ता माना जाता है। (ii) यह पता चला है कि हालांकि उन्हें न्यायमूर्ति समीक्षा आवेदनल. खुराना की न्यायालय में तैनात किया गया था, लेकिन माननीय न्यायाधीश उनके मामलों के प्रस्तुतिकरण से खुश नहीं थे और उन्होंने महाधिवक्ता से उन्हें किसी अन्य न्यायालय में स्थानांतरित करने के लिए कहा, जो किया गया था। (iii) वह 1982 और 1985 में भाजपा के टिकट पर शिमला एसी सीट के लिए दावेदार थे। जब उन्हें टिकट नहीं मिला, तो उन्होंने पार्टी के खिलाफ काम किया और उन्हें 1985 में पार्टी से निष्कासित कर दिया गया। बाद में उन्हें 1989 में पार्टी में फिर से शामिल कर लिया गया। हालांकि, निदेशक (एटी) का यह मत था कि चूंकि उम्मीदवार को सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश की अध्यक्षता वाली चयन समिति द्वारा अनुशंसित किया गया था, इसलिए उसे संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए और न्यायमूर्ति खुराना के उनके प्रदर्शन से असंतोष को सर्वोच्च न्यायालय के कार्यवाहक न्यायाधीश की अध्यक्षता वाली चयन समिति की सिफारिश द्वारा संतुलित माना जाना चाहिए।

दिनांक 29.10.2001 को कार्मिक एवं प्रशिक्षण मंत्रालय में संयुक्त सचिव (एटी एवं ए) ने निम्न प्रभाव का एक नोटिंग बनाया: (i) श्री बालीश का मजबूत राजनीतिक जुड़ाव है और वह 1982 और 1985 में बीजेपी की ओर से शिमला एसी सीट के लिए दावेदार थे; (ii) वह औसत दर्जे के प्रतीत होते हैं और हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति खुराना ने एडवोकेट जनरल से कह दिया है कि उन्हें दूसरे

न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया जाए; और (iii) उनके चरित्र या ईमानदारी के खिलाफ कोई प्रतिकूल रिपोर्ट नहीं है।"

दिनांक 30.10.2001 को सचिव (पी) ने फाइल पर एक नोटिंग की कि श्री बटीश को नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि उनका प्रदर्शन इतना खराब था कि उन्हें दूसरे न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया था। 31.10.2001 को राज्य मंत्री ने एक नोटिंग की और निर्देश दिया कि आईबी रिपोर्ट विभागीय सिफारिशों के साथ भारत के मुख्य न्यायाधीश को भेजी जाए। तदनुसार, सचिव (कार्मिक) ने 6.11.2001 के गोपनीय ज्ञापन के द्वारा आईबी रिपोर्ट सहित सभी आवश्यक कागजातों को अग्रेषित किया और केंद्र सरकार द्वारा अनुशंसित नामों के संबंध में भारत के मुख्य न्यायाधीश की सहमति मांगी।

दिनांक 12.11.2001 को भारत के मुख्य न्यायाधीश ने 6.11.2001 के गोपनीय ज्ञापन के माध्यम से उन्हें प्रस्तुत प्रस्ताव पर सहमति व्यक्त की। 14.1.2002 को चयनित उम्मीदवारों की नियुक्तियों की अधिसूचना जारी की गई, लेकिन प्रथम और द्वितीय प्रत्यर्थी नियुक्त नहीं किए गए।

30.06.2003 को, द्वितीय प्रत्यर्थी-राम किशोर प्रसाद ने झारखंड उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या 3098/2003 दायर की, जिसमें केंद्रीय सरकार के उस निर्णय को चुनौती दी गई थी कि उन्हें केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण (सीएटी) के न्यायिक सदस्य के रूप में नियुक्त नहीं किया गया था। उन्होंने केंद्रीय सरकार से यह अपील की कि चयन सूची में उनके नाम शामिल होने के आधार पर उन्हें नियुक्त किया जाए। 23 सितंबर 2003 को झारखंड उच्च न्यायालय ने रांची में द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा दायर रिट याचिका को खारिज कर दिया। न्यायालय ने यह भी माना कि चयन सूची में किसी अभ्यर्थी का नाम शामिल होने से ही उसे नियुक्त होने का कोई अधिकार नहीं मिलता है। सीएटी जैसे न्यायिक पद पर नियुक्त करने के मामले में नियुक्तकर्ता प्राधिकारी का न केवल अधिकार, बल्कि कर्तव्य भी है कि वह आईबी की रिपोर्ट और इनपुट के आधार पर उम्मीदवार के पूर्ववृत्त का सत्यापन करे। नियुक्तकर्ता प्राधिकारी किसी ऐसे व्यक्ति को नियुक्त नहीं करने के लिए स्वतंत्र था जिसका नाम चयन समिति द्वारा तैयार की गई सूची में शामिल था। न्यायालय ने कहा कि भारत के मुख्य न्यायाधीश को प्राप्त आईबी रिपोर्ट के आधार पर द्वितीय प्रत्यर्थी को बाहर रखने को लेकर सरकार का कोई गलत काम नहीं हुआ है। सभी प्रासंगिक तथ्यों से भारत के मुख्य न्यायाधीश को अवगत कराने के बाद ही नियुक्ति का प्रस्ताव दिया गया था, इसलिए इस मामले में न्यायिक समीक्षा की कोई गुंजाइश नहीं रहती है। इस दृष्टिकोण के आधार पर रिट याचिका को बेबुनियाद पाया गया और खारिज कर दिया गया। द्वितीय प्रत्यर्थी ने उपरोक्त फैसले की समीक्षा के लिए सिविल समीक्षा संख्या 119/2003 दायर किया, जिसे झारखंड उच्च न्यायालय के 11.08.2004 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। उपरोक्त निर्णयों से क्षुब्ध होकर, द्वितीय प्रत्यर्थी ने इस न्यायालय में सिविल अपील संख्या 7575-7576/2004 दायर की है।

पहले प्रत्यर्थी-के.डी. बटीश ने हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय, शिमला के समक्ष रिट याचिका संख्या 812/2003 दायर की, जिसमें केंद्रीय सरकार के सीएटी के न्यायिक सदस्य के रूप में उन्हें नियुक्त नहीं करने के निर्णय को चुनौती दी और अपनी नियुक्ति के लिए परमादेश मांगा। हालांकि केंद्रीय सरकार ने उक्त रिट याचिका का विरोध किया, उच्च न्यायालय ने अपने 25 मई 2004 के फैसले द्वारा रिट याचिका को स्वीकार कर लिया और प्रतिवादियों को रिट याचिका (भारत संघ और नियुक्तकर्ता प्राधिकारी) को निर्देश दिया कि चयन समिति द्वारा उनके चयन के आधार पर, याचिकाकर्ता-के.डी. बटीश को सीएटी के न्यायिक सदस्य के रूप में उनकी नियुक्ति के लिए विशेष मामले के रूप में नए सिरे से विचार करें।

भारत संघ ने सिविल रिट याचिका संख्या 812/2003 में उच्च न्यायालय के फैसले को सिविल अपील संख्या 6663/2004 के माध्यम से चुनौती दी है, जिसमें के.डी. बटीश और राम किशोर प्रसाद

क्रमशः पहले और दूसरे प्रत्यर्थी हैं। राम किशोर प्रसाद हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष दायर रिट याचिका में प्रत्यर्थी थे और इसलिए उन्हें इस मामले में भी प्रत्यर्थी बनाया गया है।

विद्वान सॉलिसिटर जनरल ने हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय के फैसले पर सीधा हमला करते हुए तर्क दिया कि उच्च न्यायालय ने अपनी न्यायिक समीक्षा की शक्तियों से कहीं अधिक काम किया है और भारत संघ और नियुक्तकर्ता प्राधिकारी के मुख्य न्यायाधीश की सहमति प्राप्त करने के बाद, पहले और दूसरे प्रतिवादियों को केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण (सीएटी) के न्यायिक सदस्यों के पदों पर नियुक्त नहीं करने के निर्णय में गंभीर गलती की है। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि उच्च न्यायालय ने एक रजिस्ट्रार जनरल के हलफनामे को मंगाने की असामान्य प्रक्रिया को अपनाकर गलती की है, जिसे उसी उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति खुराना से प्राप्त निर्देशों के आधार पर दायर किया गया था और जिसका उपयोग उक्त रिट याचिका के फैसले में प्रमाण के रूप में किया गया था, हालांकि उच्च न्यायालय स्वयं इस बात से अवगत था कि यह एक "असामान्य प्रक्रिया" थी।

विद्वान सॉलिसिटर जनरल ने आगे तर्क दिया कि उच्च न्यायालय अधिनियम की धारा 6 और 7 के दायरे को ध्यान में रखने में पूरी तरह से विफल रहा है, कि उम्मीदवारों की नियुक्ति के प्रस्ताव के साथ-साथ आईबी रिपोर्ट सहित सभी प्रासंगिक कागजात मुख्य न्यायाधीश को उनकी सहमति के लिए भेजे गए थे, और सभी सामग्री पर विचार करने के बाद, मुख्य न्यायाधीश ने भारत सरकार के प्रस्ताव से सहमति व्यक्त की थी। प्रस्ताव में बताए गए उम्मीदवारों की नियुक्ति के लिए।

माननीय सॉलिसिटर जनरल के तर्कों में तथ्य का बल है। ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने इस मामले में ऐसे व्यवहार किया है जैसे किसी कार्यकारी अधिकारी द्वारा की गई नियुक्ति से निपट रहा हो। यह याद रखना चाहिए कि सीएटी संविधान के अनुच्छेद 323 ए के तहत गठित एक न्यायाधिकरण है और उससे उच्च न्यायालय के समान अधिकार क्षेत्र होने की उम्मीद है। नतीजतन, संसद ने अधिनियम की धारा 6 और 7 के माध्यम से, यह सुनिश्चित करने के लिए विशेष सावधानी रखी है कि अधिनियम में निर्धारित योग्यता रखने वाले किसी भी व्यक्ति को सदस्य के रूप में नियुक्त नहीं किया जाएगा, सिवाय मुख्य न्यायाधीश से परामर्श के बाद। मुख्य न्यायाधीश से परामर्श न तो एक नियमित मामला है, न ही एक औपचारिकता है। यह याद रखना चाहिए कि सीएटी जैसे प्रशासनिक न्यायाधिकरण का एक सदस्य व्यापक न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करता है, और ऐसे सदस्य को किसी भी प्रकार के प्रभाव से मुक्त, पूर्ण न्यायिक स्वतंत्रता सुनिश्चित की जानी चाहिए जो स्वतंत्र न्यायिक कामकाज में हस्तक्षेप कर सकता है या उसके खिलाफ विद्रोह कर सकता है। यही कारण है कि भारत सरकार ने एक नीतिगत निर्णय लिया था कि बार के सदस्यों को ऐसे पद पर नियुक्त करने पर विचार करते समय, उनके पूर्ववृत्त को आईबी द्वारा सत्यापित किया जाना चाहिए। पूर्ववृत्त में विभिन्न तथ्य शामिल होंगे, जैसे असामाजिक तत्वों, गैरकानूनी संगठनों, राजनीतिक जुड़ाव, आचरण की ईमानदारी और नैतिक ईमानदारी के साथ जुड़ाव। इन सभी कारकों का सत्यापन आवश्यक रूप से किया जाना चाहिए, इससे पहले कि नियुक्तकर्ता प्राधिकारी केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण (सीएटी) के सदस्य जैसे संवेदनशील पद पर किसी उम्मीदवार की नियुक्त करने का निर्णय लेता है। *दिल्ली प्रशासन बनाम सुशील कुमार* के मामले में इस न्यायालय ने जोर दिया कि पुलिस सेवाओं में एक कांस्टेबल की नियुक्त करने के लिए भी, चरित्र और पूर्ववृत्त का सत्यापन यह जांचने के लिए महत्वपूर्ण मानदंडों में से एक है कि क्या चयनित उम्मीदवार राज्य के तहत एक पद के लिए उपयुक्त है। भले ही ऐसे उम्मीदवार शारीरिक रूप से स्वस्थ पाए गए, लिखित परीक्षा और साक्षात्कार पास किए और अनंतिम रूप से चयनित किए गए, यदि उनके पूर्ववृत्त रिकॉर्ड के कारण, नियुक्तकर्ता प्राधिकारी ने ऐसे रिकॉर्ड वाले व्यक्ति को कांस्टेबल के रूप में नियुक्त करना उचित नहीं समझा, तो नियुक्तकर्ता प्राधिकारी द्वारा लिया गया दृष्टिकोण अन्यायपूर्ण नहीं कहा जा सकता है, न ही इसे न्यायिक समीक्षा में रोका जा सकता है। ये टिप्पणियां एक कांस्टेबल के मामले में की गई हैं, ये सीएटी के न्यायिक सदस्य की नियुक्ति के मामले में अधिक जोश के साथ लागू होंगी। यही ठीक कारण है कि

अधिनियम की धारा 6 की उप-धारा (7) के लिए आवश्यक है कि, सीएटी के सदस्य की नियुक्ति "भारत के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श के बाद ही" की जा सकती है। यह परामर्श, निश्चित रूप से, मुख्य न्यायाधीश भारत के समक्ष सभी आवश्यक कागजात रखे जाने के बाद एक प्रभावी परामर्श होना चाहिए, और यह पद पर बिल्कुल उपयुक्त उम्मीदवारों की नियुक्ति की आभासी गारंटी है।

दुर्भाग्य से, ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने इस आधार पर काम किया है कि नियुक्ति केंद्र सरकार द्वारा स्वयं की जा रही थी और सचिव द्वारा आईबी रिपोर्ट को अनुचित महत्व देकर एक अनियमित प्रक्रिया का पालन किया गया था। आईबी रिपोर्ट में उठाए गए मुद्दों पर अपील करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा शपथ पत्र और बार में एडवोकेट जनरल के मौखिक बयान के आधार पर इसे अस्वीकार करने का प्रयास करना सबसे अनियमित था। हम उच्च न्यायालय की ऐसी कार्रवाई की कड़ी निंदा करते हैं, खासकर जब उच्च न्यायालय को बताया गया था कि, सरकार द्वारा किए गए प्रस्तावों के साथ, राज्य मंत्री ने विशेष रूप से भारत के मुख्य न्यायाधीश को उनकी सहमति लेने के लिए आईबी रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निर्देश दिया था, और यह किया गया था। हम खेद के साथ ध्यान दें कि उच्च न्यायालय न केवल भारत सरकार द्वारा लिए गए निर्णय पर, बल्कि मुख्य न्यायाधीश भारत के फैसले पर भी अपील पर बैठा है, जिसे उसने एक तरफ हवा में उड़ा दिया। हमारे विचार में, उच्च न्यायालय ने ऐसा करने में गंभीर गलती की है। भले ही यह मान लिया जाए कि भारत सरकार के संबंधित विभाग के सचिव ने खुद को सभी आवश्यक तथ्यों से अवगत नहीं कराया है, लेकिन भारत के मुख्य न्यायाधीश जैसे उच्च संवैधानिक प्राधिकारी को ऐसी प्रक्रियात्मक या मूलभूत त्रुटि मानना या लगाना संभव नहीं है। बार में दिया गया तर्क कि मुख्य न्यायाधीश भारत को आवश्यक इनपुट नहीं दिए गए होंगे, में कोई योग्यता नहीं है। यदि संसद ने इस देश में न्यायिक पदानुक्रम के पितृसत्ता के रूप में भारत के मुख्य न्यायाधीश में विश्वास जताया है, तो किसी के लिए यह दावा करना खुला नहीं है कि मुख्य न्यायाधीश भारत ने बिना दिमाग लगाए या आवश्यक इनपुट मांगे बिना अपनी सहमति दी होगी। कम से कम कहने के लिए, इस तर्क को सारांश खारिजगी का हकदार है।

इस मामले में, झारखंड उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण हमारी प्रशंसा का पात्र है। झारखंड उच्च न्यायालय ने इस मामले को इस सिद्धांत पर ले लिया कि इस तरह के मामले में न्यायिक समीक्षा उपलब्ध नहीं है। झारखंड उच्च न्यायालय ने यह भी सही बताया कि चयन सूची में किसी उम्मीदवार का नाम शामिल होने से ही उसे कोई अधिकार नहीं मिलता है, और यदि कोई अधिकार नहीं है, तो मौजूद नहीं होने वाले अधिकार के प्रवर्तन के लिए रिट याचिका दायर करने का कोई अवसर नहीं हो सकता है।

पंजाब राज्य बिजली बोर्ड और अन्य बनाम मलकीअत सिंह के मामले में, इस न्यायालय ने *शंकरसन दास बनाम भारत संघ* के मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ के टिप्पणियों को दोहराया:

"7. यह कहना ठीक नहीं है कि यदि नियुक्ति के लिए कई रिक्त पदों को अधिसूचित किया जाता है और पर्याप्त संख्या में उम्मीदवार उपयुक्त पाए जाते हैं, तो सफल उम्मीदवारों को नियुक्त किए जाने का एक अक्षम्य अधिकार प्राप्त होता है जिसे वैध रूप से अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। आमतौर पर अधिसूचना केवल योग्य उम्मीदवारों को भर्ती के लिए आवेदन करने के लिए आमंत्रण के रूप में होती है और उनके चयन पर वे पद पर कोई अधिकार प्राप्त नहीं करते हैं। जब तक प्रासंगिक भर्ती नियम ऐसा नहीं दर्शाते, तब तक राज्य सभी या किसी भी रिक्त पद को भरने के लिए कोई कानूनी कर्तव्य के तहत नहीं है। हालांकि, इसका मतलब यह नहीं है कि राज्य को मनमाने ढंग से कार्य करने का लाइसेंस मिल गया है। रिक्त पदों को नहीं भरने का निर्णय उचित कारणों से सद्भावना से लिया जाना चाहिए। और यदि रिक्त पदों या उनमें से किसी को भर दिया जाता है, तो राज्य भर्ती परीक्षा में उम्मीदवारों की तुलनात्मक योग्यता का सम्मान करने के लिए बाध्य है, और किसी भी प्रकार के भेदभाव की अनुमति नहीं दी जा सकती है। इस सही स्थिति का लगातार इस न्यायालय द्वारा पालन किया गया है, और हम *हरियाणा राज्य बनाम सुभाष चंदर मरवाहा*, *नीलिमा शांगला*

बनाम हरियाणा राज्य, या *जतिंदर कुमार बनाम पंजाब राज्य* के फैसलों में कोई असंगत नोट नहीं पाते हैं।" (जोर दिया गया)

हमारे विचार में, इस प्रकृति के मामले से निपटने के लिए यह अपनाया जाने वाला सही दृष्टिकोण है।

के. अशोक रेड्डी बनाम भारत सरकार और अन्य के मामले में, इस न्यायालय ने संकेत दिया कि हालांकि अनुच्छेद 226 या 32 के तहत न्यायिक समीक्षा की शक्ति कितनी ही व्यापक क्यों न हो, ऐसी शक्ति के प्रयोग के लिए एक मान्यता प्राप्त सीमा है, हालांकि स्व-मान्यता प्राप्त है। इस न्यायालय ने क्रेग के प्रशासनिक कानून (द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 291) परिच्छेद 21 से एक अंश को दोहराया, जैसा कि नीचे दिया गया है:

"पारंपरिक स्थिति यह थी कि अदालतें विशेषाधिकार शक्ति के अस्तित्व और सीमा को नियंत्रित करेंगी, लेकिन उसके प्रयोग के तरीके को नहीं। पारंपरिक स्थिति को अब जी.सी.एच.क्यू मामले के फैसले से संशोधित किया गया है। उनके लॉर्डशिप ने जोर दिया कि विवेकाधीन शक्ति की समीक्षा उसके विषय-वस्तु पर निर्भर होनी चाहिए, न कि इस पर कि उसका स्रोत विधि या विशेषाधिकार था। विशेषाधिकार शक्ति के कुछ प्रयोग, उनके विषय-वस्तु के कारण, कम न्यायसंगत होंगे, लॉर्ड रोस्किल ने ऐसे निषिद्ध क्षेत्र की सबसे व्यापक सूची संकलित की...."

ऊपर संदर्भित लॉर्ड रोस्किल के अवलोकन, *काउंसिल ऑफ सिविल सर्विस यूनियन्स बनाम मिनिस्टर फॉर द सिविल सर्विस* (जी.सी.एच.क्यू केस) से हैं, जैसा कि नीचे दिया गया है:

"लेकिन मुझे नहीं लगता कि चुनौती का वह अधिकार अयोग्य हो सकता है। मुझे लगता है कि यह उस विशेषाधिकार शक्ति के विषय-वस्तु पर निर्भर होना चाहिए जो प्रयोग की जा रही है। बहस के दौरान विशेषाधिकार शक्तियों के कई उदाहरण दिए गए थे, जिनके बारे में मैं वर्तमान में सलाह देता हूँ कि उन्हें उचित रूप से न्यायिक समीक्षा का विषय नहीं बनाया जा सकता है। संधियों के निर्माण, क्षेत्र की रक्षा, दया का विशेषाधिकार, सम्मान का अनुदान, संसद का विघटन और मंत्रियों की नियुक्ति के साथ-साथ अन्य जैसे विशेषाधिकार शक्तियां, मुझे नहीं लगता, न्यायिक समीक्षा के लिए अतिसंवेदनशील हैं क्योंकि उनकी प्रकृति और विषय-वस्तु ऐसी है कि न्यायिक प्रक्रिया के लिए उपयुक्त नहीं है।"

अंत में, इस न्यायालय ने *डी स्मिथ की ज्यूडिशियल रिव्यू* ऑफ एडमिनिस्ट्रेटिव एक्शन के परिच्छेद 23 के एक अंश का उद्धरण देकर न्यायिक संयम पर जोर दिया जैसा कि नीचे दिया गया है:

"न्यायिक आत्म-संयम उन मामलों में और भी स्पष्ट था जहां राज्य के मामलों के अस्तित्व पर आरोप लगाए बिना विवेकाधीन शक्तियों के प्रयोग को अपमानित करने का प्रयास किया गया था, जिस पर उसके प्रयोग की वैधता आधारित थी। बिल्कुल ठीक है, अदालतें व्यापक विवेकाधीन शक्तियों के अनुदान में निहित सीमाओं को पढ़ने में धीमी थीं, जिन्हें राष्ट्रीय नीति के व्यापक विचारों के आधार पर प्रयोग करना पड़ सकता था।"

इस तर्क के आधार पर, यह स्वीकार किया गया था कि भारत के मुख्य न्यायाधीश की सिफारिश के आधार पर उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश का स्थानांतरण न्यायिक समीक्षा से मुक्त होगा क्योंकि "मनमानी और पूर्वाग्रह के खिलाफ एक अंतर्निहित जांच है जो उन आधारों पर न्यायिक समीक्षा की आवश्यकता के अभाव को दर्शाता है। इस तरह न्यायक्षेत्र का क्षेत्र कम हो जाता है।"

हम इन टिप्पणियों को विनम्रतापूर्वक दोहराते हैं, और अपेक्षा करते हैं कि उनका ध्यान इस देश की सभी अदालतों द्वारा रखा जाए जिनमें न्यायिक समीक्षा की शक्ति निहित है।

प्रतिवादियों ने अपने तर्कों के समर्थन में इस न्यायालय के *समीक्षा आवेदनस. मीला बनाम भरत संघ* के निर्णयों पर भरोसा किया है। हमारे विचार में, उक्त प्राधिकरण उनके मामले को आगे नहीं बढ़ाता है। पहली जगह में, प्राधिकरण केवल इतना ही कहता है कि जहां एक चयन बोर्ड जिसका नेतृत्व उच्चतम न्यायालय के एक वर्तमान न्यायाधीश द्वारा किया गया था, उसने आयकर अपीलीय न्यायाधिकरण के सदस्यों के रूप में नियुक्ति के लिए कुछ उम्मीदवारों की सिफारिश की थी, भारत सरकार के लिए बिना कार्रवाई किए उक्त सिफारिश पर विचार करना खुला नहीं था। यह ऐसा मामला नहीं था जहां उचित कारण से किसी उम्मीदवार को नियुक्त नहीं करने के निर्णय में भारत के मुख्य न्यायाधीश ने सहमति व्यक्त की थी।

*डॉ. ए.के. दोषी बनाम भारत संघ*¹ में निर्णय, जिस पर प्रतिवादियों ने भरोसा किया, उसका भी कोई परिणाम नहीं है। यह भी भारत के मुख्य न्यायाधीश की सहमति का मामला नहीं था और किसी भी घटना में, इस न्यायालय ने संबंधित विभाग के सचिव की ओर से एक निश्चित मात्रा में दुर्भावना पाई थी।

दूसरे प्रत्यर्थी-राम किशोर प्रसाद, जिन्होंने अपना खुद का केस लड़ा, ने पहले प्रत्यर्थी के तर्कों को अपनाया। इसके अलावा, उन्होंने लंबे लिखित तर्क प्रस्तुत किए और तर्क दिया कि उनका नाम बी से हटा दिया गया था। अच्छे विश्वास के साथ अवैध रूप से एक जे.के. कौशिक का पक्षपात करना, जो मेरिट सूची में नीचे था। निराधार आरोप के अलावा, उच्च न्यायालय के समक्ष इस दुर्भावनापूर्ण इरादे के समर्थन में कोई सामग्री पेश नहीं की गई, न ही उच्च न्यायालय ने मामले को स्वीकार किया।

हमने दूसरे प्रत्यर्थी द्वारा दलीलें सावधानीपूर्वक पढ़ी हैं। *सरवन सिंह लाम्बा और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य*² के फैसले पर निर्भरता किसी भी तरह से मदद नहीं करती है। *सरवन सिंह* (उपरोक्त) कोई ऐसा प्राधिकरण नहीं है जो हमारे द्वारा लिए जा रहे दृष्टिकोण के विरुद्ध जाता है। दूसरी ओर, यह फैसला भी सुझाव देता है कि जहां उम्मीदवार पदों के लिए विधिवत योग्य और पात्र थे, जिनके खिलाफ उनकी नियुक्ति हुई थी, और उन सभी की नियुक्तियां भारत के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श के बाद की गई थीं, वहां उनकी नियुक्तियों में किसी कानून या प्रक्रिया का उल्लंघन नहीं हुआ था।

हम उन कई अधिकारियों का विस्तार से उल्लेख करना अनावश्यक समझते हैं, जिन पर दूसरे प्रत्यर्थी ने भरोसा किया है, क्योंकि हमारे विचार में, वे प्रासंगिक नहीं हैं।

परिणाम स्वरूप, हमारा मत है कि हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय का विवादित निर्णय गलत है और इसे रद्द करने की आवश्यकता है, जबकि झारखंड उच्च न्यायालय का निर्णय और आदेश कानून की स्थिति के अनुरूप है और इसे बरकरार रखने की आवश्यकता है। इसलिए, हम झारखंड उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश एफ के खिलाफ निर्देशित सिविल अपील संख्या 7575-7576/2004 को खारिज करते हैं।

हम सिविल अपील संख्या 6663/2004 में भारत संघ की अपील की अनुमति देते हैं और रिट याचिका संख्या 812/2003 में हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय के विवादित निर्णय को रद्द करते हैं।

लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

सिविल अपील संख्या 7575-7576/04 खारिज।

विक्रान्त ठाकुर की देखरेख में सुमीत कपूर द्वारा अनुवादित।

- i [1996] 11 एससीसी 605
- ii [2005] 9 एससीसी 22
- iii [1991] 3 एससीसी 47
- iv [1974] 3 एससीसी 220
- v [1986] 4 एससीसी 268
- vi [1985] 1 एससीसी 122
- vii [1994] 2 एससीसी 303
- viii (1985) ए.सी 371
- ix उपरोक्त प्रस्तर 24
- x [1995] सप. 2 एससीसी 230
- xi [2001] 4 एससीसी 43
- xii [1995] 4 एससीसी 546